समन्वय का मार्ग : स्याद्वाद

डॉ० अरुणलता जैन

"स्याद्वाद जैन दर्शन का एक अभेद्य किला है जिसके अन्दर प्रतिवादियों के गोले प्रवेश नहीं कर सकते।", महामहोपाध्याय पं० स्वामी राम मिश्र शास्त्री के स्याद्वाद के विषय में उक्त विचार बड़े ही समीचीन हैं। वस्तुतः स्याद्वाद जैन दर्शन में व्यवहृत अनेकान्त सिद्धान्त की एक पद्धति विशेष है जो वस्तु के अनन्त ज्ञानांशों का प्रकारान्तर से प्रकाशन करती है। एकान्तिक, एकांशिक, एकांगिक दृष्टियों से समाज, राष्ट्र, विश्व में वैयक्तिक-विग्रह उत्पन्न होता है। स्याद्वाद उसका निवारक है साथ ही सत्य का निकट से परिचय कराता है।

स्याद्वाद वैज्ञानिक उपाय

यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो वस्तु के परिज्ञान के साधन प्रत्येक व्यक्ति के समक्ष एक ही रूप में उसका ज्ञान उजागर नहीं करते। स्वाध्ययन और अनुभव के आधार पर पदार्थ के भिन्न-भिन्न रूप अनुभूति में आते हैं जिन्हें तर्क द्वारा झुठलाया नहीं जा सकता और न भ्रमपूर्ण कहा जा सकता है। इन भिन्न-भिन्न दृष्टियों, अनुभूतियों पर अनेकान्त दृष्टि से विचार न करके जब संकीर्ण-भाव से विचार कर एकान्त दृष्टि से असत्य मान लेते हैं, तब ऐसे विचार संघर्ष का कारण बनते हैं। ऐसी दृष्टि वाले लोग एकान्तवादी होने के कारण सत्य के सर्वांगीण विकास से वंचित रह जाते हैं। जैन दर्शन का स्याद्वाद एक वैज्ञानिक उपाय है जो ऐसी तमोमय स्थिति को प्रकाशमान तथा गतिमान बनाता है।

स्याद्वाद का अर्थ

अब देखना यह है कि स्याद्वाद है क्या जिसमें संघर्ष-निवारण तथा शान्ति-प्रसारण की शक्ति निहित है। स्याद्वाद यौगिक शब्द है, स्यात् + वाद, "स्यात् सहितं वाद स्याद्वादः।" स्यात् शब्द सापेक्षता की सिद्धि करता है जिसका अर्थ है कथंचित् तथा वाद का अर्थ है कथन। इस प्रकार 'स्यात्' सहित कथन होने के कारण यह पद्धति स्याद्वाद कहलाती है। किसी पदार्थ के शेष अनेक गुणों को नकारते नहीं वरन् गौण बनाकर तत्कालिक स्थित्यनुसार गुण विशेष का प्रमुख रूप से प्रतिपादन करना ही स्याद्वाद है।

सकलादेश, विकलादेश दृष्टि

यह कथन के साथ 'स्यात्' शब्द का प्रयोग एकान्त दृष्टि का निराकरण करती है। जब पदार्थ के अनन्त गुणों धर्मों पर दृष्टि रहती है तब इसे सकलादेश दृष्टि तथा पदार्थ के एक गुण धर्म विशेष को मुख्य तथा शेष गुणों को गौण बनाकर कथन किया जाय तो यह विकलादेश दृष्टि होती है। सकलादेश प्रमाण-दृष्टि तथा विकलादेश नय-दृष्टि कहलाती है। सद्रूप पदार्थ में रहे हुए अनन्त धर्मों को एक साथ विषय करने वाला प्रमाण है, "सकलादेश प्रमाणाधीनाः"। प्रमाण वस्तु को अखंड रूप में ग्रहण करता है। प्रमाण-दृष्टि में वस्तुगत समस्त धर्मों में विशेष, गौण स्थिति नहीं होती है। वस्तु किसी अपेक्षा से कथंचित् सत् है। इस कथन में वस्तु के एक अस्तित्व गुण का कथन है। उसमें निहित अनेक का नहीं। किन्तु यहां वक्ता का अभिप्राय प्रतिपादित अस्तित्व गुण के साथ, उसमें निहित अविवक्षित नास्तिकत्व, अवक्तव्य आदि गुणों के कथन से भी है। नय की दृष्टि से वस्तुगत अन्य विवक्षित-धर्मा गौणता की दृष्टि में आते हैं। जबकि प्रमाण-दृष्टि से ये सभी धर्म एक गुण के प्रतिपादन द्वारा एकसाथ ग्रहण कर लिये जाते हैं। एक वस्तु में अविरोध रूप में सत्-असत् आदि धर्म की कल्पना की जाती है। इस प्रकार सातों में से किसी-किसी धर्म की मुख्यता से समान धर्मों के ग्रहण करने में प्रमाण सप्तभंगी[1] प्रतीत होता है। ये दोनों दृष्टियाँ सात नामों से निर्दिष्ट हैं :—

१. "एकस्मिन्न विरोधेन प्रमाणनयवाक्यतः।
सदादि कल्पना या च सप्तभंगीति सा मता॥", पंचास्तिकाय १४/३०/१५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१. स्यात् अस्ति
२. स्यात् नास्ति
३. स्यात् अस्ति नास्ति
४. स्यात् अवक्तव्य
५. स्यात् अस्ति अवक्तव्य
६. स्यात् नास्ति अवक्तव्य
७. स्यात् अस्ति नास्ति अवक्तव्य

वस्तु में अनेकत्व

वस्तु अनन्तधर्मात्मक है, अनेक पर्यायों का आधार है। अनेक का तात्पर्य वस्तु में सन्निहित विवक्षित तथा अविवक्षित दो विरोधी धर्मों से है। वस्तु में दो विरोधी धर्म किसी खास विवक्षा से ही रह सकते हैं। नित्य का विरोधी अनित्य, एक का विरोधी अनेक, भेद का विरोधी अभेद आदि है। वस्तु नित्य है यह द्रव्य-दृष्टि है, वस्तु अनित्य है यह पदार्थ-दृष्टि है। जब आभूषण को कंगन कहते हैं तब कंगन वस्तु की पर्याय-दृष्टि से कहा गया इसलिए अनित्य है, क्योंकि कभी गलवा कर अंगूठी आदि बनवाई जा सकती है। अतः इसकी पर्याय नष्ट हो सकती है। जब यह कहते हैं कि कंगन सोने का है तब यह द्रव्य-दृष्टि है क्योंकि सोना नित्य है; गलाने पर भी सोना ही रहेगा। 'स्यात्' शब्द वस्तु के अस्तित्व गुण को प्रधानता से बताता है। इसके द्वारा अनेकान्त और सम्यक्-एकान्त का बोध होता है। एक ही दृष्टि से वस्तु दोनों नहीं हो सकतीं। वस्तु के अनन्त धर्मों का बोध न होने के कारण एकान्तवादी स्याद्वाद को नहीं समझ सके। वाणी के द्वारा एकसाथ सत्य का पूर्ण कथन नहीं हो सकता।

जिस धर्म का वर्णन किया जाता है वह मुख्य तथा अन्य गौण बन जाते हैं। एकान्तदृष्टि से अन्य गौण धर्म वस्तु से पृथक् माने जाते हैं। इस प्रकार एकान्त दृष्टि से वस्तु का सौन्दर्य समाप्त हो जाता है। यह निश्चित है कि संसार विरोधी तत्त्वों से पूर्ण है। उदाहरणार्थ संखिया प्राणघातक पदार्थ माना गया है किन्तु वैद्यक प्रक्रिया द्वारा यह प्राणरक्षक बन जाता है। यदि संखिया को अनुपात में न खाया जाए तो वह प्राणघातक बन जाता है। किन्तु वैद्य के परामर्श के अनुसार यथाविधि सेवन करने पर प्राणरक्षक होता है। स्पष्ट है कि संखिया पदार्थ में एक ही नहीं दोनों दृष्टियां सन्निहित हैं। इस प्रकार वस्तु के स्वरूप के विषय में समन्वयकारी परस्पर मैत्री रखने वाली दृष्टि से वस्तु का सत्स्वरूप हृदयग्राही होता है।

स्याद्वाद भगवान् ऋषभदेव की देन

स्याद्वाद नया नहीं है। भगवान् ऋषभदेव ने ही इसका प्रतिपादन कर दिया था। भगवान् महावीर के समय तक संदर्भ बदल गए। जनसाधारण को समझाने का नया आयोजन भगवान् महावीर ने किया था। आज भी लोग स्याद्वाद को नहीं समझ पाते। स्याद्वाद में व्यवहृत 'स्यात्' को अरबी भाषा के 'शायद' शब्द का पर्यायवाची मानते हैं। जिसके आधार पर उन्होंने स्याद्वाद को संशयवाद का पर्याय मान लिया। यह भ्रामक है। ऐसे लोग इस शब्द के वास्तविक अर्थ से अपरिचित हैं। शंकराचार्य जैसे विद्वान् भी स्याद्वाद के अर्थ को न समझ पाए। यह प्रश्न उठना भी स्वाभाविक है कि जो नित्य है वह अनित्य भी है, जो एक है वह अनेक भी है, जो वाच्य है वह अवाच्य भी है, कैसे ? किन्तु स्याद्वाद इन विपक्षी तत्वों का निराकरण नहीं करता बल्कि समर्थन करता है। यही स्याद्वाद की विशेषता है। विभिन्न सापेक्षिक दृष्टियों द्वारा ही उसका वास्तविक स्वरूप-दर्शन हो सकता है। विज्ञान हो या धर्म सापेक्षता की मूल धारणा एक-सी रहेगी, सिद्धान्त एक-सा होगा। वैज्ञानिक आइन्स्टाइन ने सापेक्षता के सिद्धान्त द्वारा सिद्ध किया है कि परमाणु में अनन्त शक्ति विद्यमान है। यह सिद्धान्त भगवान् महावीर ने हजारों वर्ष पूर्व खोज निकाला था।

स्याद्वाद नित्य व्यवहार की वस्तु

स्याद्वाद जीवन में नित्य व्यवहार की वस्तु है। इसकी उपादेयता स्वीकार करनी होगी अन्यथा लोक-व्यवहार चलना कठिन है। जो अनेकान्त का विरोध करते हैं वे भी इसे अपने जीवन में अपनाते हैं। स्याद्वाद ऐसा सिक्का है जो समस्त विश्व में चलता है। इसकी मर्यादा से बाहर कोई वस्तु नहीं है। जैनाचार्यों ने अपने सरस साहित्य द्वारा इस ज्ञान-गर्भित सिद्धान्त को जनसाधारण तक पहुंचाया। तत्वार्थ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजवार्तिक[1] में आचार्य अकलंकदेव ने बताया है कि वस्तु का वस्तुत्व इसी में है कि वह अपने स्वरूप को ग्रहण करे और पर की अपेक्षा अभावरूप हो। इन विधि-निषेध दृष्टियों को अस्ति और नास्ति दो भिन्न धर्मों द्वारा बताया।

स्याद्वाद सत्याग्रह है

साररूप में यह सिद्धान्त हमें सजग किए रहता है कि जगत् के अनेक रूप हैं, पक्ष हैं, गुण हैं। मानव अपनी सीमित अवधारण क्षमता के कारण एक रूप, एक पक्ष, एक गुण को ग्रहण कर पाता है और इसी गर्व में भरकर स्व से भिन्न रूपों, पक्षों, गुणों को समझने वाले से झगड़ जाता है। ऐसी स्थिति में दोनों पक्षों का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। क्योंकि वह ज्ञानमद में डूबकर दूसरों से व्यर्थ ही वाद-विवाद में उलझा रहता है। वर्तमान समय में सम्पूर्ण संसार में युद्ध, विध्वंस, वैमनस्य का कारण मानव का यही एकान्त-दृष्टि के प्रति दुराग्रह है। स्याद्वाद सत्याग्रह है जिसका अर्थ है कि जैसे तुम्हारे दृष्टिकोण में सत्यांश है वैसे ही दूसरों के। अपने ही दृष्टिकोण को सत्य और दूसरे के को असत्य नहीं मानना चाहिए।

आत्मवत् व्यवहार का आधार स्याद्वाद

पाश्चात्य दर्शन विघटन मानकर चलता है। भारतीय दर्शन समन्वय को अपनाने में प्रयत्नशील है। कारण यह है कि यहां जीवन के शाश्वत मूल्यों का महत्व है केवल भौतिक व्यवस्था का नहीं। व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास के लिए सामाजिक संगठन आवश्यक है। मानव अपने जीवन लक्ष्यों को प्राप्त कर सके। इसके लिए ऐसी सामाजिक व्यवस्था हो जो लक्ष्य प्राप्ति के पथ की बाधाओं का उन्मूलन कर सके। आत्मिक समानता की अनुभूति हुए बिना समुचित विकास सम्भव नहीं। समाज के विघटन का मूल हेतु विषमता है। विषमता तभी दूर हो सकती है जब कि सभी से आत्मवत् व्यवहार करें। आत्मवत् व्यवहार तभी आचरित हो सकता है जब अनेकान्त-दृष्टि अपनाई जाय। सामाजिक उत्कर्ष के लिए व्यक्ति में आत्म-निर्णय के साथ आत्मानुशासन आवश्यक है। किसी दूसरे पर अपनी शक्ति का दुरुपयोग न करे, अपनी सत्ता लादने का प्रयास न करें क्योंकि जितना अधिक बाह्य नियंत्रण होगा उतना ही उसका निस्तेज होगा। इसलिए सापेक्षता की आवश्यकता है। सापेक्षता से ही सत्य का सही ज्ञान तथा निरूपण हुआ। एकांतिक, एकांशिक दृष्टि होने के कारण कुछ व्यक्ति अधिकार, पदलिप्सा में डूबे रहते हैं। दूसरों को अवसर नहीं मिलता तब असंतोष की ज्वाला भड़क उठती है। इस दृष्टि से भारत को ही नहीं विश्व को भी जैन दर्शन की सबसे बड़ी देन स्याद्वाद है। स्याद्वाद इन स्थितियों का निवारण कर सकता है।

संग्रह-वृत्ति का परिहार

विषमता का कारण तृष्णा भी है जिससे संग्रह-वृत्ति जन्म लेती है। यह वृत्ति आसक्ति रूप में बदल जाती है। तभी परिग्रह की भावना जागृत होती है जिससे समाज में अन्याय, अत्याचार, शोषण का जन्म होता है। एक वर्ग सम्पन्न तथा दूसरा विपन्न हो जाता है। जैन दर्शन का स्याद्वाद स्पष्ट करता है कि प्रत्येक व्यक्ति का अस्तित्त्व है, जैसे मैं हूं वैसे वह भी है, मेरी आवश्यकता है वैसे उसकी भी, मैं अधिक संग्रह कर लूंगा तो दूसरों को क्या मिलेगा यह भावना परिग्रह-भावना का उच्छेद करती है। जिससे सामाजिक व्यवस्था में सन्तुलन आता है। स्याद्वाद आध्यात्मिक जीवन का मूल तो है ही लौकिक जीवन को भी सुव्यवस्थित करता है। प्रजातन्त्र के लिए यह आधारशिला है। अनेकान्त आगाध समुद्र है जिसमें एकान्तिक विचाररूपी नदियों को आत्मसात कर लेने की क्षमता है।

स्याद्वाद मन के तनावों को रोकता है

पारस्परिक विवाद समाप्त करने के लिए समन्वयकारी दृष्टिकोण की आवश्यकता है। स्याद्वाद मन के तनावों को रोकता है यदि यह दृष्टि न रहे तो सभी सम्बन्धों में, चाहे वे पारिवारिक हों या सामाजिक, राष्ट्रीय हों या अर्न्तराष्ट्रीय, तनाव, टकराव, संघर्ष छिड़ जाते हैं। अतः इनसे बचने के लिए तथा संतुलित जीवन-यापन करने के लिए अनेकान्त स्याद्वाद को अंगीकार करना आवश्यक है।

स्याद्वाद के महत्व को विदेशी विद्वानों ने स्वीकार किया है। प्रो० हर्मन जेकोबी ने लिखा है—"जैन धर्म के सिद्धान्त प्राचीन भारतीय तत्त्वज्ञान और धार्मिक पद्धति अभ्यासियों के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। इस स्याद्वाद से सर्व सत्य विचारों का द्वार खुल जाता है।" आज का विश्व जटिल, गुटबन्दी में संघर्षशील है। प्रत्येक राष्ट्र एक-दूसरे का विश्वास खो बैठा है। सभी राष्ट्र स्वयं को शक्तिशाली मानते हैं। किस समय एक-दूसरे पर प्रहार कर दें कुछ पता नहीं। भौतिक उपलब्धियाँ मिलीं किन्तु मानव आन्तरिक रूप से भीत है। कुछ समान सम्पन्नता वाले राष्ट्र आपस में गुट बनाकर अन्य राष्ट्रों को दबाने के यत्न में है। जिससे चारों तरफ हाहाकार मचा हुआ है। गुटबन्दी का

---

१. "स्वपरात्मोपादानापोहनव्यवस्था पाद्यं हि वस्तुनो वस्तुत्वम्", तत्त्वार्थराजवार्तिक, पृ० २४

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निराकरण करने के लिए गुटनिरपेक्षता को अपनाकर ही शान्ति व्यवस्था लाई जा सकती है। इस गुट निरपेक्षता का आधार स्याद्वाद है।

महावीर का दृष्टिकोण

भगवान् महावीर ने कहा था कि कोई मत, सिद्धान्त असत्य नहीं है। विरोधियों द्वारा स्वीकृत सत्य भी सत्य है क्योंकि विरोधियों के सत्य में भी सृजनात्मक तत्व विद्यमान रहते हैं। स्व-सत्य से तालमेल न बैठने के कारण उनकी उपेक्षा विध्वंसात्मक भावों को जन्म देती है। यह सत्य है कि मानव द्रव्य के सम्पूर्ण रूप को एक साथ नहीं समझ सकता यदि ऐसा ही हो तो सर्वज्ञ बन जाय। कोई एक मार्ग नहीं है जिस पर आगे बढ़कर सत्य के सभी पक्षों का ज्ञान हो जाय। स्याद्वाद में दुराग्रह नहीं है। इस सिद्धान्त को अपनाते हुए राष्ट्रीय नीतियों की स्वीकृति के साथ अन्य राष्ट्र की नीतियों में जो ग्रहण करने योग्य हो, उसे भी अपनाना चाहिए। जिस प्रकार दूसरों के विचारों को सत्य व प्रमाणिक रूप में स्वीकार करते हैं। उसी प्रकार अन्य राष्ट्रों की नीतियों, उनकी सार्वभौमिकता के प्रति भी सम्मान का भाव रखना आवश्यक है। जब किसी 'वाद' को ऐकान्तिक रूप से सत्य मानते हैं और अन्य 'वादों' को असत्य मानते हैं तब द्वन्द्वात्मक स्थिति सामने आती है। स्याद्वाद ही असहिष्णुता तथा मनमानी विचारधाराओं में परिमार्जन कर उन्हें नया रूप दे सकता है। स्याद्वाद का शिक्षण अपने प्रति ही नहीं समस्त मानव जाति के प्रति आदर अनुराग उत्पन्न कर समन्वय की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देता है।

स्याद्वाद सम्पूर्ण जैनेतर दर्शनों का समन्वय करता है। जैन दार्शनिकों का कथन है—

बौद्धानामृजुसूत्रतो मतमभूद्वेदान्तिनां संग्रहात्।
सांख्यानां तत एव नैगमनयाद् यौगश्च वैशेषिकः॥
शब्दब्रह्मविदोऽपि शब्दनयतः सर्वैर्नयैर्गुंफितां।
जैनी दृष्टिरितीह सारतरता प्रत्यक्षमुद्वीक्ष्यते॥

—अध्यात्मसार, जिनमतिस्तुति

अभिप्राय यह है कि सम्पूर्ण दर्शन नयवाद में समाहित हो जाते हैं, अतएव सम्पूर्ण दर्शन नय की अपेक्षा से सत्य हैं। उदाहरणतः ऋजुसूत्रनय की अपेक्षा बौद्ध, संग्रहनय की अपेक्षा वेदान्त, नैगमनय की अपेक्षा न्याय-वैशेषिक, शब्दनय की अपेक्षा शब्दब्रह्मवादी तथा व्यवहारनय की अपेक्षा चार्वाकदर्शन को सत्य कहा जा सकता है। ये नयरूप समस्त दर्शन परस्पर विरुद्ध होकर भी समुदित होकर सम्यक्त्व रूप कहे जाते हैं।

सच्चा अनेकान्तवादी किसी भी दर्शन से द्वेष नहीं करता। वह सम्पूर्ण नयरूप दर्शनों को इस प्रकार वात्सल्य-दृष्टि से देखता है, जैसे कोई पिता अपने पुत्रों को देखता है। क्योंकि अनेकान्तवादी को न्यूनाधिक बुद्धि नहीं हो सकती। वास्तव में सच्चा शास्त्रज्ञ कहे जाने का अधिकारी वही है, जो स्याद्वाद का अवलम्बन लेकर सम्पूर्ण दर्शनों में समान भाव रखता है। वास्तव में माध्यस्थ्य भाव ही शास्त्रों का गूढ़ रहस्य है, यही धर्मवाद है। माध्यस्थ्य भाव रहने पर शास्त्रों के एक पद का ज्ञान भी सफल है, अन्यथा करोड़ों शास्त्रों के पढ़ जाने से भी कोई लाभ नहीं।

यस्य सर्वत्र समता नयेषु तनयेष्विव।
तस्यानेकान्तवादस्य क्व न्यूनाधिकशेमुषी॥
तेन स्याद्वादमालम्ब्य सर्वदर्शनतुल्यताम्।
मोक्षोद्देशाविशेषेण यः पश्यति सः शास्त्रवित्॥
माध्यस्थ्यमेव शास्त्रार्थो येन तच्चारु सिध्यति।
स एव धर्मवादः स्यादन्यद्बालिशवल्गनम्॥
माध्यस्थ्यसहितं ह्येकपदज्ञानमपि प्रमा।
शास्त्रकोटिः वृथैवान्या तथा चोक्तं महात्मना॥

—अध्यात्मसार, ६१, ७०, ७२, ७३

—सम्पादक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org